संपादकीय

सरलीकरण की ओर चुनाव

कोरोना काल में बिहार में हो रहे चुनाव की प्रक्रिया का सरलीकरण कितना उपयोगी व टिकाऊ होगा - यह तो समय बताएगा; किंतु विभीषिका की बेला में चुनाव संपन्न होना भी एक उपलब्धि है। पहली बार नामांकन के लिए ऑनलाइन सुविधा की गई है। ऑफलाइन नामांकनकर्ता के साथ पाँच लोग रह सकेंगे, काफिले में दो गाड़ियाँ रह पाएँगी। घर-घर चुनाव प्रचार में भी पाँच लोग एकसाथ घूम सकेंगे, वर्चुअल रैली करने की पूरी आजादी है ही, यदि कहीं बंद जगह या हॉल में प्रत्यक्ष रैली होगी तो उसमें आपसी दूरी बनाए रखते हुए अधिकतम दो सौ लोग सम्मिलित हो सकेंगे। खुले स्थान की रैली के लिए समय, स्थान के अनुरूप लोगों की संख्या निर्धारित होगी। तामझाम से परे भीड़, शोरगुल से विलग यह चुनाव कई दृष्टियों से आसान हो रहा है, हालाँकि नई प्रक्रिया के तहत नई चुनौतियाँ और समस्याएँ भी उत्पन्न होंगी, जिनका पता समय बीतने के बाद ही चल सकेगा। कोरोना के बहाने ही सही, चुनाव की सहज प्रक्रिया अंततः फायदेमंद साबित होगी। अनेक प्रकार के करों में छूट की तरह कोरोना काल में नामांकन शुल्क कम या खत्म न होना संभवतः इसलिए संभव नहीं हुआ, क्योंकि चुनाव लड़ने वालों से उम्मीद की जाती है कि वे आर्थिक रूप से विपन्न न हों, साथ ही उनके प्रायोजक-प्रोमोटर भी पूरे दिलेर हों। बिहार में बाढ़ की विभाषिका ने भी दो-दो, तीन-तीन बार तबाही मचाई है।

लोकबंदी में पलायन की समस्या भले चुनावी मुद्दा न हो, पर परोक्ष रूप से यह चुनाव को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता। पिछले कुछ महीनों में बड़ी संख्या में लोग बिहार पहुँचे हैं। रोजगार, व्यवसाय पर छाए आसन्न संकटों के कारण विषम स्थिति उत्पन्न हुई। मतदान करते समय पलायनकर्ता कामगारों और उनके परिजनों द्वारा जेहन में यह टीस कुरेदेगी ही। पचास लाख से ऊपर जो लोग गाँव-घर पहुँचे हैं, उन्होंने देश-दुनिया को नजदीक से देखा-जाना है। उनकी वजह से मतदाता का स्वरूप इस बार वही नहीं है जो अमूमन रहता आया है। पूर्व में वोट डालने कितने लोग गाँव आते-जाते थे। अमूमन जो जहाँ है, वहीं वोट डालता है। यह आवश्यक नहीं कि पलायनकर्ता सब लोग मतदाता हों ही, फिर भी अलग अंदाज के लाखों वोटरों की उपस्थिति के कारण मतदान का प्रतिशत निश्चित रूप से अधिक होगा। यह मुद्दा वर्तमान सरकार के खिलाफ जा सकता है, पर पूरे देश में भाजपा के खिलाफ ज्यादा प्रतिकूल माहौल नहीं है, बेशक नई-नई समस्याओं से लोग बेचैन हैं। राष्ट्रीय स्तर की भाजपा के पक्ष की हवा का लाभ जनता दल यू और भाजपा गठबंधन को मिल सकता है। लेकिन परंपरागत स्थिर नेतृत्व के कारण गठबंधन के प्रति मनोवैज्ञानिक ठहराव है, पहले जैसा आकर्षण भाव भी नहीं दिखता। इसका खामियाजा भुगतना पड़ सकता है, परंतु विरोधी भी कितना लाभ उठा पाएँगे - यह उनकी कार्यक्षमता और विश्वसनीयता पर निर्भर करेगा।

राष्ट्रीय जनता दल में शीर्ष स्तर पर मजबूत नेतृत्व का अभाव है, जिसकी वजह से अनेक नेताओं ने पार्टी छोड़ी है और राजद की शिथिलता सामने आई है; हालाँकि इस कमी को दूर करने, नैतिक मनोबल बनाए रखने और राष्ट्रीय स्तर का समर्थन हासिल करने के लिए कांग्रेस से समझौता किया है, नहीं तो कांग्रेस का अपने दम पर दस-बीस सीट जीतना भी नामुमकिन है। लेकिन इससे भाजपा के विरुद्ध जाने की क्षतिपूर्ति किसी न किसी रूप में होती है। इधर लोक जनशक्ति पार्टी ने भाजपा के साथ रहते हुए भी जनता दल यू से अलग लड़ने का फैसला किया है। यह फैसला साहसिक है, साथ ही बिहार में स्वतंत्र वजूद बनाने की कवायद भी, जिसका देर-सबेर परिणाम निकल सकता है, किंतु इस प्रयास में वह भाजपा से दूर जा सकती है। यदि इस चुनाव में थोड़ा भी अच्छा प्रदर्शन किया और ऐसी संभावना बनती दिखी, जिसमें राजद के साथ जाने से सरकार बन रही हो तो उसका छिटकना स्वाभाविक होगा और केंद्र में भी भाजपा से संबंध विच्छेद हो सकता है। वैसे भी उसके समर्थन पर भाजपा की सरकार नहीं टिकी है। इसलिए साथ होने या न होने से दोनों के अस्तित्व में फिलहाल कोई खास अंतर नहीं पड़ेगा। लोजपा यथास्थिरता और ठहराव में नया आयाम लाने के लिए प्रयासशील है, वह अपना दम दिखाने और लोगों का मूड भाँपने की जोखिम उठा रही है।

हर चुनाव की तरह इस चुनाव में दल-बदल की विकासोन्मुख परंपरा पीछे होती नहीं दिखती। एक-दूसरे को पानी पी-पीकर कोसने वाले मिनटों में अपनी निष्ठा बदल रहे हैं। न तो व्यक्तिगत स्तर पर और न दलीय स्तर पर आने-जाने में कहीं कोई कठिनाई है, निषेध का सामना नहीं करना पड़ता। चुनाव के समय एकाएक अपने से बिलकुल विपरीत कार्य पद्धति वाले दलों में पहुँचकर सहज हो जाना, उसी क्षण उम्मीदवार बन जाना या अनौपचारिक रूप से प्रत्याशी बन जाने के बाद ही सदस्यता ग्रहण करना दलीय लोकतंत्र के साथ क्रूर मजाक है और सिद्धांत, विचारधारा, व्यवहार के स्तर पर दिवालिया हो चुकी दलबंदी का प्रमाण भी। नीति और सिद्धांत समयानुरूप बदलते हैं, विकासोन्मुखी होकर परिपक्व हो सकते हैं, पर आजकल येनकेन प्रकारेण टिकट हथियाने का बोलबाला है, इसलिए सालों की 'निष्ठा' बदलने में समय नहीं लगता। इस चुनाव में भी लगभग पचास जन प्रतिनिधि रहे लोगों ने अपना पाला बदला है, दूसरे पदाधिकारियों की बात अलग है। इसे देखते हुए संवैधानिक संशोधन द्वारा दल-बदल के अंतर्गत यह शर्त लगा देनी चाहिए कि दल बदलने वाले को चुनाव और संगठन में पद हासिल करने के लिए कुछ साल तक नए दल में काम करना होगा, जैसे स्वयंसेवी संगठनों को सरकारी अनुदान तभी मिलता है, जब वे पंजीकरण के तीन साल पूरे कर लेते हैं; डीएवीपी के अंतर्गत सरकारी विज्ञापन उन्हीं पत्र-पत्रिकाओं को मिलता है, जो तीन साल पूरे कर चुके हैं। लेकिन दल-बदल का मुद्दा उन लोगों के हित से सन्नद्ध है, जो स्वयं कानून बनाते-बनवाते हैं और स्वयं ही उसका समूचा लाभ लेते हैं। इसलिए यह बदलाव संभव नहीं लगता।

चुनाव से पहले टिकट के लिए पैसे लेने और टिकट बेचने की बात सामने आने लगी है। टिकटार्थियों में आपाधापी स्वाभाविक है, पर इसके लिए किसी हद तक जाना भी क्या स्वाभाविक है? चुनाव का जटिलता से सरलता की ओर जाना शुभ संकेत है, वहीं दल-बदल में सिद्धांत नहीं, केवल किसी तरह टिकट हथियाकर चुनाव जीतने की व्यवहारधारा काम कर रही है, यानी संपूर्ण समर्पण टिकट के प्रति है, न कि विचार-सिद्धांत के प्रति। जिस दल से जीतने की संभावना प्रबल दिखती है, उसके टिकट के लिए माथापच्ची-मारामारी ज्यादा है। अस्तु, चुनाव आयोग की दूरदर्शिता के कारण दीवाली-छठ से पूर्व चुनाव प्रक्रिया पूर्ण होकर रिजल्ट आ जाएगा, फलतः दिवाली की रौनक और छठोपासना में विघ्न नहीं पड़ेगा। नई सरकार के गठन में जीतने वालों के जश्न और समर्थकों की नई उमंग से दिवाली चकाचौंध हो जाएगी।

विभाजन का विकल्प

क्षेत्रीय आंदोलनों और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप बड़े राज्यों को विभाजित कर छोटे राज्यों का निर्माण होते रहा है। इसी सिलसिले में उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र को विभाजित कर नए राज्य बनाने की आवश्यकता जब-तब व्यक्त हुई है। बहरहाल, अपराध कमोबेश सब जगह होते हैं, परंतु उत्तर प्रदेश एवं बिहार ऐसे राज्य हैं, जिनकी कानून व्यवस्था के बारे में सवाल उठते रहे हैं। न भी उठें, तब भी कभी भी उठाए जा सकते हैं, क्योंकि आए दिन छोटे-मोटे अपराध जगह-जगह होते हैं। 23 करोड़ की जनसंख्या के साथ उत्तर प्रदेश भारत का सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य है। क्षेत्रफल में भी राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के बाद इसका चौथा नंबर है। बड़े क्षेत्र व बड़ी आबादी के कारण अपराधमुक्त बनाना चुनौती है और इसीलिए उत्तर प्रदेश की कानून व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगते हैं। लेकिन भारत के कुल अपराधों में उत्तर प्रदेश का आनुपातिक अंश देखा जाए तो वह बहुत अधिक असंतुलित नहीं लगता। आखिर भारत का हर सातवाँ व्यक्ति उत्तर प्रदेश का है, ठीक वैसे ही जैसे विश्व का हर सातवाँ व्यक्ति भारतीय है; अतः कुल अपराधों में उत्तर प्रदेश की सहभागिता का औसत अनुपात 7:1 के आसपास ज्यादा बुरा नहीं कहा जाएगा। लेकिन प्रदेश के किसी कोने में घटित अपराध पूरे प्रदेश को झकझोरते हैं, बदनाम करते हैं। बड़ा राज्य होने की वजह से विकासोन्मुखी कार्यों से लेकर कानून व्यवस्था संभालने तक में दिक्कतें आती हैं, राज्यवार अपराधों के आँकड़ों के ग्राफ में उत्तर प्रदेश काफी ऊपर चढ़ जाता है। संपूर्ण उत्तर प्रदेश खाँटी हिंदी भाषी क्षेत्र है। हिंदी के आदि रूप खड़ी बोली का उद्‌भव स्थल भी है। खड़ी बोली के अतिरिक्त हिंदी की प्रमुख बोलियाँ ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी बोलने वाले करोड़ों की संख्या में हैं। भाषायी आधार पर राज्यों का गठन हुआ है, लेकिन उत्तर प्रदेश की बोलीगत विविधता भी विभाजन की नींव बन सकती है, वैसे 'कोस-कोस पानी बदले, तीन कोस पर बानी' के कारण सैद्धांतिक रूप से इसे सब जगह नहीं अपनाया जा सकता। उत्तर प्रदेश को कभी तीन तो कभी चार भागों में बाँटने का तर्क दिया जाता है। पश्चिमी प्रदेश यानी हरित प्रदेश, पूर्वांचल प्रदेश और बुंदेलखंड को राज्य बनाने की माँग कम-अधिक उठती रही है। खड़ी बोली के क्षेत्र को हरित प्रदेश बनाने की माँग है। इसी प्रकार पूर्वांचल भोजपुरी क्षेत्र है और बुंदेलखंड बुंदेली का बोली क्षेत्र। बाकी बचे मध्य या अवध क्षेत्र के लोगों की रुचि नैसर्गिक रूप से उत्तर प्रदेश को न बँटने देने की है। आम तौर पर समकालीन राजनीति में इस क्षेत्र के लोगों का प्रभुत्व रहा है। वे उत्तर प्रदेश के शासन-प्रशासन में प्रभावी भूमिका निभाते रहे हैं।

उत्तर प्रदेश को यदि तीन भागों में बाँटा जाए, तब एक प्रदेश की जनसंख्या औसतन 7-8 करोड़ और चार भागों में बाँटने पर औसतन 5-6 करोड़ बैठेगी। तब भी यह केंद्र शासित प्रदेशों के अलावे बीस-बाईस राज्यों की अलग-अलग जनसंख्या से अधिक होगी। उत्तर प्रदेश की 80 लोकसभा सीटें क्षेत्रफल में अपने से बड़े दो राज्यों राजस्थान और मध्य प्रदेश के संयुक्त सीटों से अधिक हैं। इन्हें चार भागों में विभक्त करने पर औसतन 20 और तीन भागों में विभक्त करने पर 26-27 लोकसभा सीटें बनेंगी। इसी प्रकार 2,40,928 वर्ग किलोमीटर वाले उत्तर प्रदेश को तीन भागों में बाँटने पर क्षेत्रफल औसतन 80,000 वर्ग किलोमीटर और चार भागों में बाँटने पर 60,000 वर्ग किलोमीटर बैठेगा; जो भारत के 12 से 14 राज्यों से अधिक ठहरता है। बँटवारे में भौगोलिक दृष्टि से कोई क्षेत्र छोटा और कोई बड़ा होगा, पर संतुलन सधेगा और विकेंद्रित विकास का रास्ता अख्तियार होगा। 16 नवंबर, 2011 को उत्तर प्रदेश सरकार ने जो प्रस्ताव केंद्र को भेजा था, उसमें पूर्वांचल प्रदेश में 32 जिले, पश्चिमी प्रदेश में 22 जिले, अवध प्रांत में 14 जिले, बुंदेलखंड के अंतर्गत 7 जिलों को रखने का खाँका था। पूर्वांचल प्रदेश में वाराणसी, गोरखपुर, बलिया, देवरिया, आजमगढ़, बस्ती, मऊ, संत कबीरनगर, बलरामपुर, श्रीवास्ती, बाराबंकी, गाजीपुर, जौनपुर आदि जिले हो सकते हैं। राजधानी गोरखपुर या वाराणसी हो सकती है। बुंदेलखंड में हमीरपुर, ललितपुर, जालौन, झाँसी, महोबा, बांदा आदि शामिल हो सकते हैं। झाँसी राजधानी हो सकती है। पश्चिमी प्रदेश में आगरा, अलीगढ़, मेरठ, सहारनपुर, मुरादाबाद, बरेली आदि सम्मिलित हो सकेंगे। मेरठ को राजधानी का दर्जा मिल सकता है। उत्तर प्रदेश या अवध प्रांत में लखनऊ, अयोध्या, प्रयागराज, कानपुर आदि सम्मिलित हो सकेंगे। लखनऊ यथावत राजधानी बना रहेगा। राष्ट्रीय लोक दल, बहुजन समाज पार्टी विभाजन के प्रबल पक्षधर हैं। भारतीय जनता पार्टी भी छोटे राज्यों का सिद्धांततः समर्थक है, भले ही उत्तर प्रदेश के परिदृश्य में फिलहाल पचड़े में पड़ने से बचे। अभी भाजपा की ही सरकार है, अतः श्रेय कम, विभाजन का ठीकरा उसी पर फूटेगा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपनी आंतरिक संरचना के अंतर्गत इन्हीं सब नाम-क्षेत्रों से उत्तर प्रदेश को अनेक प्रांतों में बाँट रखा है। कांग्रेस का समर्थन हासिल हो सकता है, पर समाजवादी पार्टी ऐसे किसी विभाजन के विरोध में मुखर है।

हर प्रदेश की कुछ-न-कुछ विशिष्टता है, पर समूचे उत्तर प्रदेश की अपनी वैविध्यपूर्ण विशिष्टता है। जिन भौगोलिक भागों में इसे बाँटने के बारे में सोचा जाता है, उन सबकी अपनी-अपनी भौगोलिक विशिष्टता भरी पहचान है चाहे पश्चिमी या हरित प्रदेश हो या फिर पूर्वांचल क्षेत्र। जो पहाड़ी क्षेत्र उत्तराखंड अपनी प्राकृतिक स्थिति व रमणीक स्थल होने के बावजूद उपेक्षित था, उसका इसी उत्तर प्रदेश से अलग अस्तित्व बन जाने के उपरांत विकास हुआ, क्योंकि वहाँ के लोगों की और वहाँ के लोगों के लिए अपनी सरकार है। स्थानीय लोग समस्याओं से ज्यादा अवगत होते हैं और निदान के लिए जागरूक व तत्पर भी हो सकते हैं! धन-धान्य से परिपूर्ण होने पर भी संसाधनों का दोहन संपन्न इलाके के लोग अधिक करते हैं, मूल स्थानीय वासी उपेक्षित रह जाते हैं; ठीक वैसे ही जैसे संपन्नों के हित में विपन्नों का स्वार्थ तिरोहित हो जाता है।। कई मुख्यमंत्रियों को देने के बावजूद पूर्वांचल अभी भी पिछड़ा है। पश्चिमी क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक संपन्न है, पर बुदेलखंड में विकास की बयार का अभी भी इंतजार है। पश्चिमी क्षेत्र में गाजियाबाद-नोएडा वाला क्षेत्र राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली से सन्नद्ध है, विस्तारित राजधानी क्षेत्र में बागपत-बिजनौर तक का इलाका शामिल करने की बात उठी है। इन क्षेत्रों का रूप-स्वरूप दिल्ली की संस्कृति के सन्निकट है।

उत्तर प्रदेश के विभाजन से शासन-प्रशासन की शीर्ष इकाई लोगों के और-ज्यादा करीब हो सकेगी; राज्य की राजधानी, उच्च न्यायालय, राज्य सचिवालय और सभी प्रधान कार्यालय तक पहुँचने में पाँच-छह सौ किलोमीटर की दूरी तय नहीं करनी पड़ेगी। जाने-आने में पूरा दिन खराब नहीं होगा, समय-श्रम की बर्बादी नहीं होगी। समीपस्थ सत्ता-संचालन से शासन-प्रशासन की जवाबदेही तय होगी। जो दोषी होगा, उन्हें चिह्नित करना आसान होगा और गलती या जानबूझकर की गई हिमाकत या टालमटोल की गाज दूसरों पर नहीं गिरेगी। बड़े प्रदेश में जिम्मेवारी और गैर-जिम्मेवारी का घालमेल हो जाता है। शासनिक इकाइयाँ गाँवों-कस्बों तक पहुँचते-पहुँचते शीर्ष छोर से दूर हो जाती हैं, जबकि नागरिक सुविधा-सुरक्षा को लेकर छोटे राज्य ज्यादा सजग हैं। इनका विकास पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान है, इसलिए छोटे राज्य आधुनिक सभ्यता में प्रगति की बुनियाद सिद्ध हो रहे हैं। अपवादस्वरूप, कुछ छोटे राज्यों में भ्रष्टाचार भी अधिक है। जहाँ विकास होता है, वहाँ अधुनातन दुष्प्रवृत्तियाँ पैठ बनाती ही हैं, पर विकास का असर कानून व्यवस्था को सुधारने, संभालने पर सकारात्मक रूप से पड़ता है। अनेक परंपरागत समस्याएँ और चुनौतियाँ जो पिछड़ेपन, अशिक्षा, गरीबी के कारण पनपती हैं, उन पर अंकुश लगता है। नए प्रदेशों के निर्माण से अब तक की माँगों की परिणति पूर्ण होगी, हालाँकि नौकरशाही का बँटवारा, कर्ज का बँटवारा, राज्यों की सीमाएँ, पेंशन का बोझ, राजस्व साझेदारी जैसी उलझनों का सामना करना पड़ेगा। उत्तराखंड, झारखंड, छत्तीसगढ़ की तरह इनके लिए कोई बड़ा आंदोलन भी नहीं हुआ, इसलिए सभी राजनीतिक पार्टियों को राजी करना मुश्किल होगा; किंतु शासन-सत्ता के सहयोग से जन-जन तक पहुँचकर कानून व्यवस्था को सुदृढ़ करने के साथ समेकित विकास द्वारा आधुनिक सभ्यता के उन्नयन के लिए उत्तर प्रदेश के विभाजन पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

शल्यवृत्ति का सारथी धर्म

सोवियत रूस के राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाचॉप एक बार स्वयं गाड़ी चलाते हुए जा रहे थे। पीछे वाली सीट पर ड्राईवर बैठा था। रास्ते में जब यातायात पुलिस ने रोका, तो उन्होंने अपना परिचय बताया। पुलिसकर्मी ने कहा कि आपको पहचान रहा हूँ, पर पीछे बैठे व्यक्ति को नहीं पहचान पा रहा हूँ। उस सुपर को देखना चाह रहा था, जिसकी गाड़ी राष्ट्रपति महोदय चला रहे हैं? गौर्बाचॉप ने बताया कि गाड़ी का असली ड्राईवर वही है। ठीक ऐसा ही एक प्रसंग महाभारत में भी मिलता है, जहाँ विराट राजकुमार उत्तर के बाणों की तीक्ष्णता को देखते हुए शल्य ने उसका परिचय पूछा। उत्तर ने कहा कि इस महासंग्राम में जिस योद्धा के सारथी स्वयं वासुदेव कृष्ण हैं, वह योद्धा विराट युद्ध में मेरा सारथी रह चुका है और मैं भी उस युद्ध में उसका सारथी रह चुका हूँ। इस पर शल्य को क्रोध आया, पर वह सही था। यह महाभारत युद्ध के पहले दिन की बात है, जब भीष्म पितामह के कारण कर्ण युद्धरत नहीं थे। उनके युद्ध करने की स्थिति में श्रीकृष्ण के समानांतर कर्ण का सारथी शल्य को ही बनना था। कर्ण अर्जुन का सामना करने में सक्षम थे, किंतु श्रीकृष्ण जैसा सूझबूझ वाला सारथी उनके समीप नहीं था। शल्य एक सीमा तक समर्थ हो सकते थे! यद्यपि सारथी होने के बावजूद शल्य ने युधिष्ठिर को दिए वचन के अनुरूप कर्ण को सदैव हतोत्साहित करने का कार्य किया, क्योंकि उन्होंने सारथी बनने का प्रस्ताव सहर्ष नहीं स्वीकारा था, वरन् छल से कौरव पक्ष की ओर कर लिए गए थे; लड़ने तो वे अपने भांजे पांडवों की ओर से आए थे। शल्य ने सारथी रहते हुए भी सदैव कर्ण के हित के प्रतिकूल मनोवैज्ञानिक दबाव बनाए रखने के लिए विषवमन किया; पराजय व वीरगति की ओर उसे अग्रसर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। किसी भी संग्राम में संगी-साथियों की शल्य जैसी वृत्ति घातक होती है। दूसरी ओर, जबरन किसी को किसी कार्य में प्रवृत्त कराना भी अनुचित है। भाजपा के वयोवृद्ध नेता लाल कृष्ण आडवाणी अक्सर चुनाव अभियान में ऐसी शल्यवृत्ति से बचने की नसीहत देते थे। ऐसी वृत्ति के संग रहते हुए किसी भी अभियान में सफलता नहीं पाई जा सकती।

श्रीकृष्ण महाभारत युद्ध में शस्त्र न उठाने के लिए वचनबद्ध थे और वास्तव में उन्होंने युद्ध किया भी नहीं, पर वे महाभारत के महानायक सिद्ध हुए। सबसे प्रमुख योद्धा अर्जुन का सारथी धर्म निभाकर पांडव पक्ष को विजय दिलाई और सिद्ध किया कि जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है। अर्जुन के प्राण जब भी संकटग्रस्त होते थे, तब श्रीकृष्ण अपने विवेकी पराक्रम से बचा लेते थे। मोहग्रस्त, संशययुक्त, किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन के मन की उद्विग्नता को दूर करके युद्ध के लिए भी उन्होंने ही राजी किया, नहीं तो शुरू होने से पहले ही महायुद्ध खत्म हो जाता। यदि अर्जुन युद्ध में नहीं उतरते तो पांडव भी कन्नी काट जाते और यदि लड़ते भी तो उनकी पराजय होती। स्वयं अर्जुन भी संशयग्रस्त होकर लड़ते तो भी उसकी हार निश्चित थी। इसलिए जिसके हाथ में जीवनयान की डोर हो और जीवन जिस यान पर चढ़कर संघर्षरत हो, उसकी डोर थामने वाला व्यक्ति स्थिर चित्त वाला होना चाहिए। यह स्थिर जीवन की बागडोर नहीं, वरन् उन मूल्यों, मान्यताओं के लिए हो रहे संघर्ष की जेबड़ी है, जिसके लिए आदमी जीता या मरता है। इससे एक के साथ अनेक लोगों की आकांक्षाएँ जुड़ी हैं, राज्य-राष्ट्र के अस्तित्व का सवाल सन्नद्ध है; न्याय व धर्म की जीत और उसकी स्थापना का प्रश्न संपृक्त है। त्रेता युग में रावण से युद्ध के समय राम के पास रथ नहीं था, जबकि रावण के पास मन की गति के हिसाब से चलने वाला कुबेर से छिना गया पुष्पक विमान था। इससे हतप्रभ इन्द्र ने श्रीराम को अपना विमान सौंपकर धर्मयुद्ध में योग दिया। तब जाकर रावण को परास्त किया जा सका। इस प्रकार परंपरागत समाज में भी वाहन-यान अपरिहार्य था और वर्तमान समाज में भी है। अपवाद सिर्फ मायावी विद्या थी, जिसकी बदौलत रथ के सारे कार्य बिना रथ के किए जा सकते थे और रथ का निर्माण भी हो सकता था। पहले भी रथी को निरुतर करने के लिए प्रतिद्वंद्वी या तो सारथी को चोट पहुँचाते थे अथवा रथ तोड़कर रथी को विरथ कर परास्त कर देते थे। भीम द्वारा द्रोणाचार्य के कई रथों को तोड़ने का उल्लेख महाभारत में है। आजकल भी युद्ध में यानों की भूमिका सर्वोच्च है, जिसमें दुश्मन के यानों को धराशायी करने की कोशिशें सम्मिलित रहती ही हैं।

जीवन को गति देने और युद्धरत रहने के लिए रथ के साथ रथवान का होना आवश्यक है। पहले अमूमन रथी रथवान नहीं होते थे, अपना रथ आजकल के गाड़ी मालिकों की तरह नहीं हाँकते थे, धुरंधरों द्वारा अपने स्नेहियों के सहायतार्थ आपद् धर्म निभाने की बात अलग है। घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर चलने वाले रथी और रथी के साथ चलने वाले, रथ चलाने वाले सारथी कहलाते थे। रथी से आगे अतिरथी, अर्द्धरथी, महारथी आदि होते थे, हालाँकि ये सब योद्धाओं के प्रकार हैं, पर यह सही है कि रथ की सवारी करते हुए ही ये लोग युद्ध करते थे। यदि रथ नहीं, रथवान नहीं तो रथी-महारथी किस बात का? सारथी मतलब रथ चलाने में ही निपुण नहीं, वरन् बुद्धिमान, प्रत्युत्पन्नमति संपन्न व्यक्ति, जिसका चातुर्य अपने रथी के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देने पर टिका हो। रथ के अलावे घोड़ा गाड़ी, बैल गाड़ी, भैंसा गाड़ी, ऊँट गाड़ी का जनसामान्य के स्तर पर ज्यादा प्रचलन था, पर हाथी, घोड़ा, ऊँट पर लोग सीधे भी सवार हो लेते थे। यह परंपरा कमोबेश अभी भी है। घोड़ा रथ के साथ सूर्य का, तो हाथी इन्द्र का वाहन है। किसी रथ में एक घोड़ा तो किसी में दो घोड़े तो किसी में चार घोड़े होते हैं, पर सूर्य के रथ की तरह सात घोड़े सामान्यतः नहीं होते थे। पशु-पक्षियों का वाहन रूप में उपयोग देवी-देवताओं के दिव्य, पर परोक्ष रूप के अनुकूल है, पर इंसान का शारीरिक गठन कितना ही क्षरित हुआ हो, पर वह इतना छोटा नहीं हुआ कि पक्षिगणों का वाहन के तौर पर उपयोग कर सके।

समकालीन समाज हो या प्राचीन काल, चाहे आधुनिक इंजन वाले वाहन हों, या फिर पुरातन पशुओं द्वारा खींचकर चलाए जाने वाले वाहन, उन्हें चलाने वालों को विशेष प्रशिक्षण की जरूरत पहले भी होती थी और अब भी लाइसेंस लेने की लंबी कवायद करनी पड़ती है, भारत सरकार ने लाइसेंस प्राधिकरण का नाम सारथी परिवहन रखकर प्रशंसनीय कार्य किया है। फिर भी आए दिन दुर्घटनाएँ होती हैं, जिनमें कभी चालक को तो कभी असवार को, कुछएक बार दोनों को गंभीर चोटें आती हैं, बेमौत मौत होती है और दूसरों की भी जान जाती है। इस प्रकार की घटनाएँ जानबूझकर या तो सामने वाले दुश्मन की जान लेने के लिए या असवार के प्राण हरने के लिए भी प्रायोजित होती हैं। ऐसे में चालक का स्वस्थ, एकनिष्ठ, वफादार-विश्वस्त होना अत्यंत आवश्यक है। सामान्य परिचालन में जब ड्राईवरी की इतनी अहमियत है, तब जहाँ नियोजित ढंग से जीवन का संग्राम चल रहा हो, जिस पर देश-दुनिया का पूरा दारोमदार टिका हो, उस समय चालक का उत्तरदायित्व न केवल बढ़ जाता है, बल्कि अपनी जान देकर भी लक्ष्य को पस्त और अपने पक्ष की रक्षा करनी होती है। ऐसे उदाहरण कभी-कभार मिलते रहते हैं। परंपरागत सारथी की तरह ही चालक गाड़ी मालिक का संगी, दोस्त और सच्चा सेवक हो सकता है, जिसके हाथों में स्वामित्व का कुछ हिस्सा भी स्वतः आ जाता है, अरुचि से चालक बनने से बचना श्रेयस्कर है और यदि प्रविष्ट हो गए तो शल्यवृत्ति से विलग रहना अपेक्षित है। रथवानों और ड्राईवरों की महत्त्वपूर्ण भूमिका ही है कि एक तरफ श्रीकृष्ण व शल्य ने इस गुरुत्व दायित्व को निभाया तो दूसरी ओर आजकल बहुत-सारे लोग अपनी गाड़ी स्वयं ही या स्वयं भी चलाते हैं। जो नहीं चलाते, उनमें से भी ज्यादातर जरूरत पड़ने पर अल्प समय के लिए चालक धर्म का निर्वाह कर लेते हैं, पर अधिकतर अपने लिए ही। यहाँ मालिक साहब और ड्राईवर साहब में अभेद हो जाता है। शायद इसी वजह से डॉक्टर साहब की तरह चालकों को ड्राईवर साहब कहने की परिपाटी पनपी हो, जबकि बड़े-बड़े अधिकारियों को यदि जरूरी-मजबूरी न हो तो पीठ पीछे साहब कहने की आदत नहीं बन पाती।